REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2023

संस्कृत वाङ्मय में निहित सृष्टि रचना प्रक्रिया

डॉ. राकेश कुमार
प्रोफेसर–संस्कृत विभाग, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

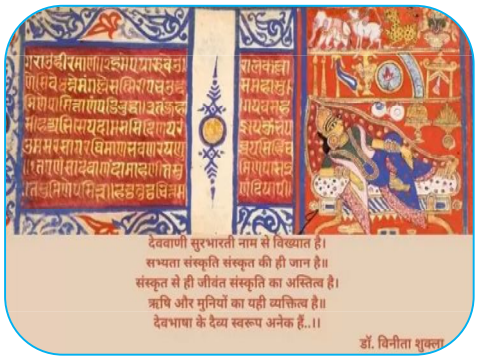

संस्कृत वाङ्मय जो की भारतवर्ष का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व का सर्वाधिक प्राचीन तथा भाषागत एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध होने के साथ–साथ सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की भावना से युक्त, एक अमूल्य एवं अनुपम निधि है। इसमें मानव समाज की धार्मिक भावनाएं और दार्शनिक विचारधारा समाहित है। यह वाङ्मय भारतीयों की जीवन धारा के स्रोत के रूप में वैदिक काल से लेकर आज तक अजस्र धारा के रूप में प्रवाहित है। संस्कृत वाङ्मय की विविध विधाओं के व्यापक फलक में वैदिक विज्ञान से लेकर साहित्य–सृजन के विविध रूप देखने को मिलते हैं। इन्हीं विधाओं में ''सृष्टि रचना'' विषयक कवि मनीषियों का चिन्तन भी अपने आप में अनन्य है।

वैदिक काल से ही भारतीय–मनीषियों में सत्य को खोजने की प्रवृत्ति रही है। वैदिक साहित्य में अन्तर्निहित यथा–वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और पुराण ग्रन्थों में इस संसार की नश्वरता को ध्यान में रखकर शाश्वत सत्य को पहचानने के लिए अनेक प्रकार की व्याख्याएँ, उपदेश और आख्यान आदि निहित हैं। **''आत्मा वा अरे दृष्टव्यः, श्रोतव्यः, निधिध्यासितव्यः''** और **''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या''** आदि के माध्यम से आत्म रूप 'परब्रह्म' परमात्मा को पहचानने का निर्देश दिया गया है।

इस जगत के सम्बन्ध में किसी विद्वान ने कहा है कि यह ''जगत हितैषी अथवा द्वेषी या मौजी देवताओं की लीला नहीं है। इसका अपना एक विधान है जिसे मानव की बुद्धि ही समझ सकती है। यह विधान समस्त मानवीय विधानों का मूल है तथा उसको प्रभावित एवं निर्धारित करता है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा विनाश आदि से सम्बन्धित इस विधान की व्याख्या करना ही सृष्टि प्रक्रिया का उद्देश्य है। प्रत्येक दर्शन ने अपनी बौद्धिक सामर्थ्यानुसार इस जटिल प्रश्न पर विचार करने का प्रयास किया है।

पाश्चात्य दार्शनिक अरस्तु ने कहा है कि **''दर्शन का प्रारम्भ आश्चर्य से होता है।''** वस्तुतः इस चित्र–विचित्र विश्व और विश्व के क्रिया–कलाप को देखकर मानव–मस्तिष्क चकित रह जाता है तथा यह चिन्तन करने के लिए बाध्य हो जाता है कि सुप्रतिष्ठित तथा सुव्यवस्थित इस संसार का कर्त्ता कौन है? यह विश्व कहाँ से आया है? हम कहाँ से आये हैं? यथार्थ सत्ता क्या है? आदि। इसी प्रकार के अनगिनत, असंख्यय विस्मयकारी प्रश्नों के समाधानार्थ मानव–मस्तिष्क अनवरत रुप से चिन्तनशील रहा है और निरन्तर चिन्तन की इस कला का नाम ही दर्शन है। निःसन्देह दर्शन का जन्म कुछ सन्दिग्ध प्रश्नों के समाधानार्थ ही हुआ हैं?

परमात्मा की इस सृष्टि में मनुष्य ही सर्वाधिक बुद्धि सम्पन्न, चिन्तन एवं मनन की क्षमता से युक्त प्राणी है। जैसा कि कहा है–**''न हि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किञ्चित''** अपने मन की स्वाभाविक कौतूहलपूर्ण संशयात्मक प्रवृत्ति की संतुष्टि हेतु ज्ञान को खोज निकालने की उसकी सदैव ही इच्छा रही है। मानव सभ्यता, संस्कृति और बौद्धिक विकास के साथ ही मनुष्य की दार्शनिक विचारधारा का भी उत्तरोत्तर विकास हुआ है। बौद्धिक जगत में दर्शन जीवन के प्रति एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसके द्वारा अदृष्ट विषयों का दर्शन होता है।

इसी क्रम में सृष्टि उत्पत्ति–प्रक्रिया विषयक यज्ञ प्रश्न भी आदिकाल से ही मनुष्य के मन–मस्तिष्क में चिन्तन का विषय रहा है। संसार में मानव के पदार्पण के साथ ही उसके मस्तिष्क में अपने चारों और चित्र–विचित्र, विस्मयकारी वस्तुओं को देखकर इस प्रकार के प्रश्न उठते रहे हैं कि आखिर यह विश्व कैसे बना? सृष्टि के प्रारम्भ में क्या था? आधुनिक विज्ञान वेत्ताओं की अन्तश्चेतना में भी मानव की वही आदि जिज्ञासा स्पन्दित होती रही है कि वे भी स्वयं से यही पूछ रहे हैं कि–यह ब्रह्माण्ड क्या है? यह अनन्त है अथवा सीमित है? यह शाश्वत है अथवा किसी प्रथम क्षण में इसकी शुरूआत हुई? इस प्रकार सम्पूर्ण इतिहास में सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया विषयक असंख्य प्रश्नों को जानने एवं समझने की मनुष्य में गहरी जिज्ञासा एवं ललक रही है।

सृष्टि उत्पत्ति–प्रक्रिया पर सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में यथा वेद–ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, पुराण तथा महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटकादि ग्रन्थों में विस्तार से उल्लेख प्राप्त होता है।

सृष्टि जन्मतिथि–:

भारतीय संस्कृति में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा (1) तिथि को सृष्टि का प्रारम्भिक दिवस माना गया है। शास्त्रों का कथन है कि सृष्टि कर्ता ब्रह्मा जी ने इसी दिन सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ किया था। ब्रह्मपुराण में लिखा है–

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा संसर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रे तु सदा सूर्योदये सति।।[1]

अर्थात् 'ब्रह्मा जी ने चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय होने पर सृष्टि रचना का कार्य प्रारम्भ किया, और इसीलिए भारतीय काल–गणना में इस दिन से नववर्ष के प्रारम्भ की मान्यता है। इस पावन तिथि में ब्रह्मा जी की सविधि पूजा करने के उपरान्त उनसे नववर्ष के शुभ होने की प्रार्थना की जाती हैं–

भगवंस्त्वत्–प्रसादेन वर्ष क्षेममिहास्तु मे।
सवंत्सरोपसर्गा में विलयं यान्त्वशेषतः।।

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया की अवधारणा विज्ञान सम्मत है। सृष्टि रचना से पूर्व यह संसार जलरूप में व्याप्त था जिससे ऋत तथा अर्णव समुद्र उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष तथा सूर्य व चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। सृष्टि उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऋग्वेद में अनेकों सूक्त हैं, जिनमें नासदीय, पुरूष और हिरण्यगर्भ सूक्त इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। 'नासत्' (न असत्) पद से प्रारम्भ होने वाला नासदीय–सूक्त वैदिक ऋषियों की सृष्टि–विषयक दार्शनिक विचारधारा का प्रतिपादन करने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सूक्त है। इस सूक्त में सृष्टि प्रक्रिया प्रकरण; सृष्टि प्रक्रिया में दर्शपौर्णमास यज्ञ, संवत्सर प्रजापति प्रकरण व यज्ञ से ही सृष्टि संचालन का पक्ष रखते हुए **महर्षि वशिष्ठ का कथन है**–

"यज्ञात् सृष्टिः प्रजायन्ते अन्नानि विविधानि च"।
तृणान्यौषधान्यथ च फलानि विविधानि च।
जीवानां जीवनार्थाय यज्ञः संक्रियतां बुधैः।।[2]

महाभारत के शान्ति पर्व में भी अग्नि में दी गई आहुति का सूर्य को प्राप्त होना तथा सूर्य से वृष्टि व सृष्टि से अन्न तथा अन्न से प्रजा की उत्पत्ति के प्रमाण मिलते हैं।[3]

सृष्टि में आदिकाल से ही यज्ञ और मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता में मनुष्य जाति के जीवन का प्रारम्भ ही मूलतः यज्ञ से माना गया है।

सहयज्ञाः प्रजा सृष्टवा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्।।
देवान् भवायतानेन ते देवाः भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।[4]

अर्थात् ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के समय यज्ञ का वैशिष्ट्य दिखलाते हुए मानव जाति की उन्नति और मनोवांछित फलों की प्राप्ति यज्ञ से ही सिद्ध की है। मूलतः यज्ञ, प्रकृति और जीवन को परिपुष्ट करने का एक वैज्ञानिक उपाय है। सूर्यादि देवों का भौतिक सृष्टि के रूप में परिणत होना तथा भौतिक सृष्टि का पुनः देवमय होने का नाम ही यज्ञ है, जो सृष्टि चक्र व सृष्टि प्रक्रिया है। ऋषियों ने सूर्य को सृष्टि का प्राण कहकर सम्बोधित किया है–

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"

अर्थात् सूर्य के अस्तित्व के साथ ही इस जगत का अस्तित्व जुड़ा है। सूर्य के अभाव में पृथ्वी पर मानव जीवन की कल्पना ही सम्भव नहीं है।

सृष्टि की संरचना में जल को मूलभूत तत्त्व माना गया है। वेदानुसार सृष्टि रचना के प्रारम्भ में सर्वत्र जल ही जल था और जल की इस उपस्थिति ने ही सर्वप्रथम विश्व का संरक्षण किया था। जल के मध्य में ही यह समग्र ब्रहमाण्ड संस्थित है। **वृहदारण्यकोपनिषद्** में जल को समस्त पदार्थों का स्रष्टा बतलाते हुए कहा है–

आपो एवेदमग्र आसुः ता आपः सत्यमसृजन्त
सत्यं ब्रह्म ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापति र्देवान्।।[5]

इतना ही नहीं संस्कृत वाङ्मय में जल को जीवन का पर्याय मानते हुए उसमें अमृत एवं औषधी का निवास बतलाया गया है–

"अप्स्वन्तरममृत अप्सु भेषजम्"।[6]

ऋग्वेद का नासदीय सूक्त, जिसका सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया की दृष्टि से अत्यन्त महत्व है। इसका प्रारम्भ सृष्टि के पूर्व की अर्थात् प्रलयावस्था वर्णन से होता है। इस सूक्त में सृष्टि प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए कहा है–

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गंभीरम्।।[7]

यहीं से ब्रह्म तत्त्व की जिज्ञासा का सूत्रपात होता है। इस सूक्त के तीसरे मंत्र **"तम आसीत्तमसा गूलहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्व मा इदम्"** से यह दिखलाया है कि उस समय सर्वप्रथम महान अंधकार से ढ़का हुआ अन्धकार ही था। इस सम्पूर्ण संसार का कारणभूत महान जलतत्त्व से भिन्न कोई चिन्ह नहीं था। अर्थात् यह संसार सागर केवल अविभाज्य जल रूप था।[8]

"कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्"[9] के माध्यम से मनस् तत्त्व को सृष्टि का आदि कारण बतलाया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि **"अप्रकेत सलिलं सर्वमा इदं"** अर्थात् प्रजापति पुरूष जब एक से अनेक रूप होने की इच्छा करता है, तभी सृष्टि की संरचना होती है। समस्त विश्व को पुरूष रूप दिखलाते हुए कहा है–

पुरूष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।[10]

अर्थात् अकेला पुरूष ही यह समस्त विश्व है। पुरूष सूक्त के इस मंत्र की इस भावना में सर्वेश्वरवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है जो तत्कालीन प्रौढ दार्शनिक चिन्तन का सूचक है इसी सूक्त में दार्शनिक पद्धति द्वारा आध्यात्मिक सृष्टि की क्रमबद्ध प्रक्रिया बतलाते हुए कहा है

तस्माद्विरालजायत विराजो अधि पूरूषः
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।[11]

हिरण्यगर्भ सूक्त में ऋषि विश्व की विशाल भूमिका पर हिरण्यगर्भ की विभूतियों का दर्शन करता हुआ प्रत्येक वस्तु में उसी हिरण्यगर्भ नामक प्रजापति के व्यक्त रूप को देखता है। तत्पश्चात् जगत के क्रमिक विकास का रूप दिखलाते हुए ऋषि ने अपने चिन्तन को इस रूप में प्रकट किया है

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।[12]

धार्मिक अथवा तात्त्विक दृष्टि से सृष्टि अवधारणा की श्रृंखला में पुरूष का भी अद्वितीय स्थान है। वाजसनेयी संहिता तथा तैत्तिरीयोपनिषद् में इसे आदित्य वर्ण पुरूष कहा गया है जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है–

आदित्यवर्णः तमसः पुरस्तात्।

सृष्टि रचना प्रक्रिया श्रृंखला में इसी पुरूष को जैमनीय उपनिषद् ब्राह्मण में परमपुरूष तथा अतिपुरूष के नाम से सम्बोधित किया गया है।[13] तथा शतपथ ब्राह्मण एवं वृहद्. उपनिषद् में उसे आदित्य ज्योति कहा गया है।[14]

सृष्टि रचना प्रक्रिया में दर्शपौर्णमास यज्ञ का महनीय योगदान दिखलाते हुए कहा है कि सृष्टि–संरचनात्मक स्थिति से पूर्व यह संसार जल रूप में विद्यमान था। जल ने यह कामना की, कि प्रजनन में कैसे समर्थता पाई जाए, एतदर्थ जल के श्रम तथा तपस्या से हिरण्यगर्भ जल में परिभ्रमण कर रहा था। मुख्य रूप से संवत्सर से पुरूष उत्पन्न हुआ तथा वही प्रजापति है; जिसका अनेक रूपों में वर्णन मिलता है। यथा– हिरण्यगर्भ प्रजापति के रूप में, संवत्सर ने 'भू उच्चारण में पृथ्वी 'भुवः' कहकर, अन्तरिक्ष लोक को 'स्वः' उच्चारण करके द्युलोक को उत्पन्न किया।

पुरुष सूक्त में समूची सृष्टि प्रक्रिया को एक यज्ञ के रूप में देखा गया है। वेद में भी सृष्टि का मूलस्रोत 'यज्ञ' को ही माना गया है। साथ ही उसे विष्णु का स्वरूप भी सिद्ध किया गया है–**''यज्ञो वै विष्णुः विष्णुर्वै यज्ञः।**

वैदिक वाङ्मय में यज्ञ का महत्त्व विशेष रूप से दिखलाते हुए कहा है। **''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म',** हजारों वर्षो से चली आ रही **शतपथ ब्राह्मण** की यह सूक्ति यज्ञ संस्कृति का बखूबी वैशिष्ट्य दर्शाती है।

महर्षि मनु ने 'मनुस्मृति' में सृष्टि प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए कहा है कि अग्नि में विधि–विधानपूर्वक दी गई आहुति सूर्यदेव को प्राप्त होती है, तत्पश्चात् उससे वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है और अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है–

अग्नौ प्रास्ताहुतिर्ब्रह्मात्रादित्यमुपगच्छति।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।[15]

इसी प्रकार सृष्टि रचना प्रक्रिया में यज्ञिय महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए महर्षि हारीत ने लिखा है–

यज्ञेन देवा विमला विभान्ति
यज्ञेन देवा अमृतत्वमाप्युः।
यज्ञेन पापैर्बहुभिर्विमुक्तः
प्राप्तनोति लोकान् परमस्य विष्णो।

अथर्ववेद में सृष्टि के आधारसूत्र प्रजापति से प्रजा के साथ सुख और दुख में सदैव सहानुभूति से युक्त होने की कामना करते हुए कहा गया है–

''प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति। प्रजापतेऽनुमा बुध्यस्व।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते।।''[16]

ऋषि दीर्घतमा ने समूची सृष्टि प्रक्रिया को मात्र एक ही पद में प्रकट करते हुए कहा है–**''जीवपीतसर्गः''** सृष्टि रचना के सन्दर्भ में उक्त पंक्ति का आशय दिखलाते हुए कहा गया है–

''अग्नि का जीवों को पीना'' अर्थात् जैसे हमारे अन्दर बैठा जठराग्नि हमारे आहार रुप जीवों को पी रहा है और हम इसी कारण जीवित हैं। जिस दिन अग्नि शीतल हो जायेगी और जीवों का पीना समाप्त हो जायेगा। अर्थात् प्राणी मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।

सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया के विषय में जब हम दर्शनशास्त्र की ओर उन्मुख होते हैं तो यह दृष्टिगोचर होता है कि प्रत्येक दर्शन ने अपनी क्षमतानुसार इस जटिल समस्या पर विचार करने का प्रयास किया है। इसमें वेदान्त दर्शन ने सुक्ष्म चिन्तन तथा गहन विमर्श द्वारा इस विश्व के निर्माण तथा विनाश का एक व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक विधान प्रस्तुत किया है। वेदान्त मतानुसार प्रतिक्षण परिणामी एवं सुव्यवस्थित व्यवस्था वाला जगत् अचेतन परमाणु–अथवा जड़ प्रकृति का कार्य नहीं हो सकता । अपितु ऐसी सुचारू व्यवस्था किसी चेतन विवेकी द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। अतः वेदान्ती सांख्यमत के विपरीत सृष्टि का आधार एकमात्र चेतन 'ब्रह्म' को बतलाते हुए कहते हैं–

''अस्य जगतो जन्मस्थितिभंगः यतः सर्वगतः सर्वशक्ति कारणात् भवति तद् ब्रह्म।''

यह सृष्टि क्यों और कैसे हुई? इस प्रश्न का उत्तर वेदान्त दर्शन में स्वभाव दिया गया है जिस प्रकार मनुष्य की श्वासोच्छ्वास प्रक्रिया स्वभाविक है तथाविध रूप से यह सृष्टि भी उत्पन्न और विनष्ट होती है और भी सृष्टि का अर्थ किसी नवीन पदार्थ की उत्पत्ति नहीं, अपितु अव्यक्त का व्यक्त होना है। 'सृष्टि' का शब्द का अर्थ है– 'सर्ग, सृष्टि तथा सत्तावान् जगत् का नाम रूप व्याकरण मात्र है।– **'' अनेन जीवेनात्मनाऽनूप्रविश्य नामारव्ये व्याकरवाणि''** इस प्रकार वेदान्तियों ने एक मात्र 'सत् तत्त्व ब्रह्म' को इस नामरूपात्मक जगत् का बीज कारण बताया है। ब्रह्म से ही समस्त भौतिक जगत् की उत्पत्ति होती है। यही वेदान्त की मर्यादा है–

"परमाच्च ब्रह्मणः प्राणादिकं जगज्जायत इति वेदान्तमर्यादा"।[17]

सृष्टि के आदि में अचेतन प्रकृति से चेतन स्वरूप के उद्भव के सन्दर्भ में ऋग्वेद का मन्तव्य समीचीन है–

ब्रह्मणस्पति संकर्मार इवा धमत्।
देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत्।।[18]

अर्थात् सृष्टि के आदि में ब्रह्मपति से देवों और असत् से सत् का प्रादुर्भाव हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता में त्रिविध यज्ञ का रहस्य उद्घाटन करते हुए सृष्टि–प्रक्रिया का ध्वयांकन किया गया है–

अफला–कांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः।।
अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरत श्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्।।
विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।।[19]

महाभारत में भी प्रजापति द्वारा सृष्टि रचना प्रक्रिया का सविस्तार उल्लेख प्राप्त होता है, जो दृष्टव्य है–

प्रजापतिरिद सर्वं मनसैवासृजत् प्रभुः।
तथैव देवान् ऋषयस्तपसा प्रतिपेदिरे।।
आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्ममूलाक्षराव्यया।
सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्रपरायणा।।[20]

सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया के सन्दर्भ में जब हम पुराणों की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करते हैं तो पाते हैं कि पौराणिक मतानुसार इस सृष्टि के मूल में एक परम तत्त्व है। पुराणों में चारों वर्गों की सृष्टि का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि–सृष्टि की कामना करते हुए ब्रह्मा जी ने तमोगुण से असुरों को पैदा किया। सात्त्विक गुण से देवों को व आंशिक सत्त्वमय देहधारी पितरों का प्रादुर्भाव हुआ। तथा इसी क्रम में रजोगुण से मानव जाति को उत्पन्न किया गया। **"वायु पुराण"** में सम्पूर्ण सृष्टि को संसार रूपी वृक्ष के समान मानते हुए कहा गया है कि इसी के अनुसार बीज–प्रकृति स्कन्ध–बुद्धि, अंकुर–इन्द्रिय, फल–सुख–दुःख व पक्षी समस्त प्राणी जगत् वृक्ष रुपी संसार है।[21]

अग्निपुराण में जगत् की सृष्टि रचना का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि श्रीभगवान ही जगत् की सृष्टि आदि के कर्ता हैं और वे सगुण व निर्गुण रूप से प्रकृति को अधिष्ठान बनाकर अपनी योग माया से सम्पूर्ण जगत् के रूप में परिणत होते हैं–

जगत्सर्गादिकां क्रीडां विष्णवोर्वक्ष्येऽधुनाश्रृणु।
स्वर्गादिकृत्स सर्गादिः सृष्ट्यादिः सगुणोऽगुणः।।[22]

मत्स्य पुराण में सृष्टि रचना प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि –जल की उत्पत्ति के पश्चात् प्रजापति देव ने सृष्टि की अभिलाषा व्यक्त की। इस विषय में मत्स्य पुराण का मन्तव्य बड़ा ही सारगर्भित है–

स सिसृक्षुरभूद् देवः प्रजापतिररिदम।
तत्तेजसश्च तत्रैष मार्तण्डःसमजायत।।
मृतेऽण्डे जायते यस्मान्मार्तण्डस्तेन संस्मृतः।[23]

अर्थात् शत्रुदमन। जब उन प्रजापति देव की सृष्टि रचना की इच्छा हुई तब वहीं पर उनके तेज से ये मार्तण्ड (सूर्य) प्रादुर्भूत हुए, क्योंकि ये अण्डे के मृत हो जाने के पश्चात् उत्पन्न हुए थे, और इसीलिए ये 'मार्तण्ड' कहनाए।

भविष्य पुराण में बतलाया गया है कि– अन्न से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं। अन्न से ही सम्पूर्ण संसार संचालित है। इसलिए अन्न ही लक्ष्मी है। अन्न को ही ब्रह्म मानकर सम्मान दिया गया है और उसी में सभी प्राणियों के प्राण प्रतिष्ठित हैं–

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणा प्रतिष्ठिताः।
अन्नाद् भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्धते।।
अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः।
धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम।।[24]

पुराणों में सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया पर जो चिन्तन हुआ है उसका उल्लेख करने के उपरान्त, जब हम ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि विषयक चिन्तन पर दृष्टि डालते हैं तो यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि रचना विषयक अनेक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सूचनाएँ संकलित हैं, जिनमें वैज्ञानिक सृष्टि क्रम का पूर्वाभास दिखाई पड़ता है। **'ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण'** के 30 वें अध्याय में, पृथ्वी के आरम्भ में गर्भरुप का विवरण प्राप्त होता है; साथ ही इस बात का भी उल्लेख प्राप्त होता है कि आदित्यों ने अंगिरसों को दक्षिणा में पृथ्वी दी। अंगिरसों ने उस पृथ्वी को तपा डाला, तब पृथ्वी सिंहिनी बनकर और मुख खोलकर मनुष्यों को खाने दौड़ी और पृथ्वी की इस जलती हुई स्थिति में उसमें उच्चावच गर्त बन गए। **शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ** ब्राह्मणानुसार सृष्टि आरम्भ में ब्रह्म के दो रूप थे–मूर्त तथा अमूर्त। इन्हें 'यत्' और 'त्यत्' अर्थात 'सत् और 'असत्' कहा जा सकता है।

"द्वै वाव ब्राह्मणों रूपे। मूर्त चैवामूर्त्तम्। स्तिथं च यच्च सच्चत्यच्च।

शतपथ ब्राह्मण में 'यज्ञ' को विश्व की नाभिस्थली बतलाया गया है। इसका अभिप्राय है कि सृष्टि के आरम्भ में एकमात्र ब्रह्म की सत्ता थी। और तदन्तर प्रजापति की–

प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत[25]

इस विषय में **शतपथ ब्राहमण** का अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्ण सामंजस्य दिखलाई पड़ता है। प्रजापति की उत्पत्ति जल में तैरते हुए हिरण्यमय अण्ड से मानी गई है–

"तस्मादाहुर्हिरण्यमयः प्रजापतिरिति"। इसके पश्चात् शनैः–शनैः प्रजापति के श्रम एवं तप से सृष्टि–प्रक्रिया आगे बढ़ी–

प्रजापतिर्हवाइदमग्र एक एवासं।
स ऐक्षत कथं नु प्रजायेय इति सोऽश्राम्यत, स तपोऽतप्यत।

तथा भुवनों में सर्वप्रथम पृथ्वी की रचना हुई–

"इयं वै प्रथिवी भूतस्य प्रथमजा"।

तत्पश्चात् हिलती हुई पृथ्वी के दृढ़ीकरण, शर्करासम्भरण (कंकड़ों की स्थापना) फेन–सृजन, मृत्तिका–सृजन, पशु–सृष्टि,औषधियों एवं वनस्पतियों की सृष्टि, अन्य लोकों की सृष्टि, संवत्सरादि की सृष्टि, विभिन्न वेदों और छन्दों के आविर्भाव का शतपथ–ब्राह्मण में वर्णन है।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण के द्वितीय काण्ड में सृष्टि–प्रक्रिया की दृष्टि से सर्वाधिक सामग्री उपलब्ध होती है। इस ब्राह्मण में सृष्टि से पूर्व किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं मानी गई है। अनभिव्यक्त नामरूप (असत्) ने ही यह इच्छा प्रकट की कि मैं सत् रूप हो जांऊ'–

"तदसदेव सन्मनोऽकुरूत स्थामिति"।

इस नाम रुप (असत्) ने तप किया, जिससे धूप, अग्नि, ज्योति, अर्चि, मरीचि, उदार और अभ्र की क्रमशः सृष्टि हुई। सृष्टा की बस्ती (मूत्राशय) के भेदन से समुद्र उत्पन्न हुआ। इसी कारण समुद्र का जल आज भी अपेय है। प्रजापति के जघन प्रदेश से असुरों की सृष्टि हुई और फिर प्रजापति ने पुनः तपस्या की, जिससे मनुष्यों, देवों और ऋतुओं की सृष्टि हुई। इस प्रक्रिया में मन का सर्वाधिक योगदान बतलाया गया है–

असतोधि मनोऽसृज्यत। मनः प्रजापतिः प्रजा असृज्यत्।

और संकल्पित अर्थ वाला यह मन ही श्वोवस्य नामक ब्रह्म है–

यदिद कि च तदेतच्छ्वोवस्यंनाम ब्रह्म।

सामवेदीय जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में सृष्टि प्रक्रिया का सम्बन्ध तीनों वेदों से बतलाते हुए कहा है कि इस सृष्टि में जो कुछ है वह सब तपस्या से प्रादुर्भूत है।[26]

षड्विश–ब्राह्मण में देवों की तपोमयी साधना से इस सृष्टि के समस्त सारभूत तत्त्व, यथा–गार्हपत्य, अग्नि, प्रभृति अग्नियाँ तथा इसके अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं।[27]

अथर्ववेदीय गोपथ ब्राह्मण में सृष्टि का प्रारम्भ ब्रह्म के श्रम और तप से हुआ बतलाया गया है। भृगु और अथर्वा प्रभृति ऋषियों ने श्रम और तप का अनुष्ठान किया और इसी से देव–सृष्टि और लोक–सृष्टि सम्भव हुई है। तथा इसी से तीनों वेदों और महाव्याहृतियों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड एवं सृष्टि की उत्पत्ति और विकास विषयक चिन्तन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। तथा मनु–मत्स्य प्रकरण में प्रलय के अनन्तर मनु के द्वारा जल एवं अमिक्षा से सम्पादित यज्ञ से एक सुन्दर स्त्री की उत्पत्ति बतलाई गई है। ''साथ ही इसी ब्राह्मण में यज्ञ को सृष्टि का मूल हेतु बतलाते हुए कहा है कि इसी यज्ञ से प्रजाएं उत्पन्न हुई हैं, जिनसे सृष्टि का क्रमिक विकास होता रहा है।''[28]

ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाई गई सृष्टि विकास की प्रक्रिया उपरान्त जब इस विषय में हम विज्ञान की ओर बढ़ते हैं तो विज्ञान की मान्यतानुसार यह सम्पूर्ण सृष्टि ऊर्जा का विभिन्न रूप है। विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ दृश्यमान है, वह सब ऊर्जा ही है। विज्ञान के मतानुसार सृष्टि प्रक्रिया स्टीफन हाकिंग के **बिग बैंग सिद्धांत** पर आधारित है। यह सिद्धांत सम्पूर्ण सृष्टि को एक बड़े आग के गोले के रूप में मानकर उसके फटने से सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ मानता है। यह आग का बड़ा गोला हिरण्याण्ड रूप है। ब्रह्माण्ड अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया को क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत करने की पहल करने का श्रेय ''अघमर्षण'' नामक ऋषि को दिया जाता है।

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय की विविध विधाओं यथा–वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, स्मृति साहित्य तथा दर्शनशास्त्र आदि ग्रन्थों का आलोड़न–विलोड़न करने के उपरान्त हम निःसन्देह रुप से कह सकते हैं कि सृष्टि रचना प्रक्रिया के विषय में इन ग्रन्थों में ऋषि–मनीषियों के अलग–अलग मत, एवं उनका चिन्तन दिखलाई पड़ता है।

ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त में जहाँ दार्शनिक पद्धति द्वारा आध्यात्मिक सृष्टि की क्रमबद्ध प्रक्रिया बतलाई गई है वहीं नासदीय सूक्त को वैदिक ऋषियों की सृष्टि विषयक दार्शनिक विचारधारा को प्रतिपादन करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूक्त बतलाया गया है। वहीं ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया विषयक अनेक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य संकलित हैं। जहाँ एक ओर इन ग्रन्थों में यज्ञ को सृष्टि का मूल हेतु बतलाया गया है वहीं दूसरी ओर सृष्टि का प्रारम्भ ब्रह्म के श्रम तथा तप से बतलाया है। साथ ही सृष्टि रचना एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सुव्यवस्थित संचालन के लिए ईश्वर–जीव एवं प्रकृति इन तीनों की सत्ता को स्वीकार किया गया है। सृष्टि विषयक ऋषि–महर्षियों के चिन्तन का अध्ययन करने से यह भी ज्ञात होता है कि विष्णु को सृष्टि रचना के मूल तत्त्व के रूप में प्रकट किया गया है, किन्तु सृष्टि रचना रूपी यज्ञ के निर्विघ्न सम्पन्न होने में ब्रह्मा, विष्णु व महेश का महनीय योगदान है। विष्णु से ब्रह्म सृष्टि रचना कर्म हेतु उद्यत होते हैं। अर्थात् विष्णु ही ब्रह्म (प्रजापति) के रूप में सम्पूर्ण जगत की रचना करते है, जबकि शैव पुराणों में शिव की प्रेरणा से सृष्टि रचना प्रक्रिया रूपी यज्ञीय कर्म सम्पन्न होता हैं इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय की विविध विधाओं में निहित सृष्टि तत्त्व का अध्ययन करने से यह स्पष्ट द्योतित होता है कि ये ग्रन्थ सृष्टिविषयक ऋषि–मुनियों के गूढ़ एवं गहन चिन्तन से परिपूर्ण हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. ब्रह्मपुराण
2. ऋग्वेद, नासदीय सूक्त
3. महाभारत, शान्तिपर्व
4. श्रीमद्भगवद्गीता
5. वृह0 उपनिषद्– 3/5/5
6. ऋग्वेद– 1/30/19
7. ऋग्वेद, नासदीय सूक्त–10/129/1
8. ऋग्वेद, नासदीय सूक्त–10/129/3
9. ऋग्वेद, नासदीय सूक्त–10/129/4
10. ऋग्वेद, पुरूष सूक्त–10/90/2
11. ऋग्वेद, पुरूष सूक्त–10/90/5
12. ऋग्वेद, प्रजापति सूक्त–10/121/1

13. जैमिनीय उप. ब्राह्मण–1/8/3
14. शतपथ ब्राह्मण–14/7/1–2, वृहद्. उपनिषद्–3/4/3/2
15. मनुस्मृति–3/76
16. अथर्ववेद–9/1/24
17. वेदान्त दर्शन
18. ऋग्वेद–10/72/2
19. श्रीमद्भगवद्गीता–17/11–13
20. महाभारत
21. वायुपुराण
22. अग्निपुराण–17/1/30
23. मत्स्य पुराण
24. भविष्य पुराण–195/43–44
25. शतपथ ब्राह्मण
26. सामवेद, जैमिनी. उपनिषद् ब्राह्मण
27. षड्विश ब्राह्मण
28. शतपथ ब्राह्मण